Chapter उनतालीस

अक्रूर द्वारा दर्शन

इस अध्याय में बतलाया गया है कि अक्रूर ने किस तरह भगवान् कृष्ण तथा भगवान् बलराम को कंस की योजनाओं तथा मथुरा में उसके कार्यों की सूचना दी, कृष्ण द्वारा मथुरा छोड़ने पर गोपियाँ किस तरह व्यथित होकर क्रन्दन करने लगी और अक्रूर ने यमुना के जल में विष्णु-धाम का किस तरह दर्शन किया।

जब कृष्ण तथा बलराम ने अक्रूर का खूब सत्कार किया और आराम से आसन पर बिठाया तो अक्रूर को लगा कि वृन्दावन की यात्रा करते समय उनके मन में जितनी इच्छाएँ उत्पन्न हुई थीं वे अब सब पूरी हो गईं। शाम को भोजन करने के बाद कृष्ण ने अक्रूर से पूछा कि उनकी यात्रा सुखद तो रही

और वे ठीक से तो हैं? भगवान् ने यह भी पूछा कि कंस उनके परिवार वालों के साथ कैसा व्यवहार कर रहा है और अन्त में यह पूछा कि वे क्यों आये हैं।

अक्रूर ने बतलाया कि कंस किस तरह यादवों को सता रहा है, नारद ने कंस से क्या कहा है और कंस किस तरह वसुदेव के साथ क्रूरता का व्यवहार कर रहा है। अक्रूर ने कंस की यह इच्छा भी बतलाई कि कृष्ण तथा बलराम को मथुरा लाकर धनुष यज्ञ देखने के बहाने और एक मल्लयुद्ध में फँसाकर उनका वध करा दिया जाय। जब कृष्ण तथा बलराम ने यह सुना, तो वे जोर से हँस पड़े। वे अपने पिता नन्द के पास गये और उनसे कंस का आदेश कह सुनाया। तब नन्द ने समस्त व्रजवासियों को यह आदेश दिया कि वे राजा कंस के लिए विविध भेंटें लेकर मथुरा चलने की तैयारी करें।

बेचारी युवा गोपियों ने जब यह सुना कि कृष्ण तथा बलराम मथुरा जा रहे हैं, तो वे अत्यन्त व्यग्र हो उठीं। उनकी सुधि-बुधि जाती रही और वे कृष्ण की लीलाओं का स्मरण करने लगीं। अपने को कृष्ण से विलग किये जाने के लिए वे विधाता को कोसने लगीं और विलाप करने लगीं। वे कहने लगीं कि अक्रूर अपने नाम (अ—नहीं, क्रूर—क्रूर) के योग्य नहीं है क्योंकि वह इतना क्रूर है कि वह उनके प्यारे कृष्ण को लिये जा रहा है। वे विलाप करने लगीं कि ''हो सकता है कि हमारा भाग्य विपरीत हो गया हो अन्यथा व्रज के बूढ़े लोग कृष्ण को जाने से रोकते। अत: हमें अपनी लाज-शर्म भूलकर भगवान् माधव को जाने से रोकना चाहिए।'' ये शब्द कह कर गोपियाँ कृष्ण का नाम ले ले कर क्रन्दन करने लगीं।

उनके इतना रोने पर भी कृष्ण तथा बलराम को अक्रूर अपने रथ पर मथुरा लिये जा रहे थे। गोकुल के ग्वाले अपनी अपनी गाड़ियों में उनके पीछे हो लिये और युवा गोपियाँ भी कुछ दूर तक पीछे लगी रहीं किन्तु बाद में वे कृष्ण की चितवन तथा इशारों से आश्वस्त हुईं और जब उन्हें कृष्ण से संदेश मिला कि ''मैं लौटकर आऊँगा'' तो उन्हें ढाढ़स बँधा। कृष्ण के विचारों में पूरी तरह डूबी गोपियाँ तब तक चित्रित आकृतियों-सी खड़ी रहीं जब तक रथ की ध्वजा अथवा सड़क पर उठने वाली धूल के बादल उनकी दृष्टि से ओझल नहीं हो गए। तब वे रास्ते भर कृष्ण का यशोगान करतीं निराश होकर अपने अपने घरों को लौट आईं।

अक्रूर ने यमुना के किनारे अपना रथ रोक दिया जिससे कृष्ण तथा बलराम मार्जन करके जल पी

सकें। जब दोनों भाई रथ में बैठ गये तो अक्रूर ने उनसे यमुना-स्नान करने की अनुमति ली। ज्योंही उन्होंने वैदिक मंत्रोच्चार किया, तो वे यह देखकर स्तम्भित हो गये कि दोनों भाई जल में खड़े हैं। अक्रूर नदी से बाहर निकल कर रथ के पास लौटकर आये तो देखा कि दोनों भाई रथ में ही आसीन हैं। तत्पश्चात् वे पुन: नदी में यह पता लगाने के लिए लौट आये कि उन्होंने जो दो आकृतियाँ देखी थीं वे असली हैं या नहीं।

अक्रूर ने जल में जो रूप देखा था वह चतुर्भुज भगवान् वासुदेव का था। उनका रंग वर्षा के नवीन बादल की तरह गहरा नीला था। वे पीताम्बर धारण किये थे और सहस्र फनों वाले अनन्त शेष की गोद में लेटे थे। सिद्धपुरुष, दैवी नाग तथा असुर उनकी स्तुति कर रहे थे और वे अपने पार्षदों से घिरे थे। उनकी सेवा में श्री, पुष्टि तथा इला जैसी शक्तियाँ लगी थीं तथा ब्रह्मा एवं अन्य देवता उनकी प्रशंसा का गान कर रहे थे। अक्रूर को यह दृश्य खूब भाया और वे अपने हाथ जोड़कर भावविह्वल स्वर में भगवान् की प्रार्थना करने लगे।

श्रीशुक उवाच
सुखोपविष्ट: पर्यङ्के रमकृष्णोरुमानित: ।
लेभे मनोरथान्सर्वान्पथि यान्स चकार ह ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; सुख—सुखपूर्वक; उपविष्ट:—बैठे हुए; पर्यङ्के—पलंग पर; राम-कृष्ण—बलराम तथा कृष्ण द्वारा; उरु—अत्यन्त; मानित:—सम्मान किया गया; लेभे—प्राप्त किया; मन:-रथान्—इच्छाओं को; सर्वान्—समस्त; पथि—मार्ग में; यान्—जो; स:—उसने; चकार ह—प्रकट किया।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : भगवान् बलराम तथा भगवान् कृष्ण द्वारा इतना अधिक सम्मानित किये जाने पर पलंग में सुखपूर्वक बैठे अक्रूर को लगा कि उन्होंने रास्ते में जितनी इच्छाएँ की थीं वे सभी अब पूरी हो गई हैं।

किमलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्रीनिकेतने ।
तथापि तत्परा राजन्न हि वाञ्छन्ति किञ्चन ॥ २ ॥

शब्दार्थ

किम्—क्या; अलभ्यम्—अप्राप्य है; भगवति—भगवान् के; प्रसन्ने—प्रसन्न होने पर; श्री—लक्ष्मी के; निकेतने—विश्रामस्थल में; तथा अपि—फिर भी; तत्-परा:—उनके भक्तगण; राजन्—हे राजा (परीक्षित); न—नहीं; हि—निस्सन्देह; वाञ्छन्ति—चाहते हैं; किञ्चन—कुछ भी।

हे राजन्, जिसने लक्ष्मी के आश्रय पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को सन्तुष्ट कर लिया हो भला

उसके लिए क्या अलभ्य है? ऐसा होने पर भी जो उनकी भक्ति में समर्पित हैं, वे कभी भी उनसे कुछ नहीं चाहते।

सायन्तनाशनं कृत्वा भगवान्देवकीसुतः ।
सुहृत्सु वृत्तं कंसस्य पप्रच्छान्यच्चिकीर्षितम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

सायन्तन—शाम का; अशनम्—भोजन; कृत्वा—करके; भगवान्—भगवान्; देवकी-सुतः—देवकीपुत्र; सुहृत्सु—अपने शुभचिन्तक सम्बन्धियों तथा मित्रों के प्रति; वृत्तम्—आचरण के विषय में; कंसस्य—कंस के; पप्रच्छ—पूछा; अन्यत्—अन्य; चिकीर्षितम्—इरादे।

शाम के भोजन के बाद देवकीपुत्र भगवान् कृष्ण ने अक्रूर से पूछा कि कंस अपने प्रिय सम्बन्धियों तथा मित्रों के साथ कैसा बर्ताव कर रहा है और वह क्या करने की योजना बना रहा है।

श्रीभगवानुवाच
तात सौम्यागतः कच्चित्स्वागतं भद्रमस्तु वः ।
अपि स्वज्ञातिबन्धूनामनमीवमनामयम् ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; तात—हे चाचा; सौम्य—हे सदय; आगतः—आया हुआ; कच्चित्—क्या; सु-आगतम्—स्वागत; भद्रम्—मंगल; अस्तु—होए; वः—तुम्हारे लिए; अपि—क्या; स्व—अपने शुभचिन्तक मित्रों; ज्ञाति—सगे-सम्बन्धी; बन्धूनाम्—तथा अन्य पारिवारिक सदस्यों के लिए; अनमीवम्—दुख से छुटकारा; अनामयम्—रोग से मुक्ति।

भगवान् ने कहा : हे भद्र पुरुष, प्रिय चाचा अक्रूर, यहाँ की आपकी यात्रा सुखद तो रही? आपका कल्याण हो। हमारे शुभचिन्तक मित्र तथा हमारे निकट और दूर के सम्बन्धी सुखी तथा स्वस्थ तो हैं?

किं नु नः कुशलं पृच्छे एधमाने कुलामये ।
कंसे मातुलनाम्नाङ्ग स्वानां नस्तत्प्रजासु च ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

किम्—क्या; नु—प्रत्युत; नः—हमारी; कुशलम्—कुशलता के बारे में; पृच्छे—मैं पूछूँगा; एधमाने—जब वह सम्पन्न हो रहा हो; कुल—हमारे परिवार का; आमये—रोग; कंसे—राजा कंस; मातुल-नाम्ना—मामा नाम से पुकारा जाने वाला; अङ्ग—मेरा प्रिय; स्वानाम्—सम्बन्धियों का; नः—हमारा; तत्—उसके; प्रजासु—नागरिकों का; च—तथा।

किन्तु हे अक्रूर, जब तक मामा कहलाने वाला तथा हमारे परिवार के लिए रोगस्वरूप राजा कंस समृद्ध हो रहे हैं, तब तक मैं अपने परिवार वालों तथा उसकी अन्य प्रजा के विषय में पूछने

की झंझट में पड़ूँ ही क्यों?

अहो अस्मदभूद्भूरि पित्रोर्वृजिनमार्ययोः ।
यद्धेतोः पुत्रमरणं यद्धेतोर्बन्धनं तयोः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

अहो—ओह; अस्मत्—मेरे कारण; अभूत्—था; भूरि—महान; पित्रोः—मेरे माता-पिता के लिए; वृजिनम्—कष्ट; आर्ययोः—निरपराध; यत्-हेतोः—जिसके कारण; पुत्र—उनके पुत्रों की; मरणम्—मृत्यु; यत्-हेतोः—जिसके कारण; बन्धनम्—बन्धन; तयोः—उनके।

जरा देखिये न, कि मैंने अपने निरपराध माता-पिता के लिए कितना कष्ट उत्पन्न कर दिया है! मेरे ही कारण उनके कई पुत्र मारे गये और वे स्वयं बन्दी हैं।

तात्पर्य : चूँकि कंस ने यह भविष्यवाणी सुनी थी कि देवकी का आठवाँ पुत्र उसका वध करेगा इसलिए वह उनके सभी पुत्रों को मारने का प्रयास करता रहा। इसीलिए उसने देवकी तथा उनके पति वसुदेव को बन्दीगृह में डाल दिया था।

दिष्ट्याद्य दर्शनं स्वानां मह्यं वः सौम्य काङ्क्षितम् ।
सञ्जातं वर्ण्यतां तात तवागमनकारणम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

दिष्ट्या—सौभाग्य से; अद्य—आज; दर्शनम्—दर्शन; स्वानाम्—अपने सगे-सम्बन्धी का; मह्यम्—मेरे लिए; वः—तुम; सौम्य—हे भद्र पुरुष; काङ्क्षितम्—इच्छित; सञ्जातम्—घटित हुआ है; वर्ण्यताम्—कृपा करके बतलाइये; तात—हे चाचा; तव—तुम्हारे; आगमन—आने का; कारणम्—कारण।

हे प्रिय स्वजन, सौभाग्यवश आपको देखने की हमारी इच्छा आज पूरी हुई है। हे सदय चाचा, कृपा करके यह बतलायें कि आप आये क्यों हैं?

श्रीशुक उवाच
पृष्टो भगवता सर्वं वर्णयामास माधवः ।
वैरानुबन्धं यदुषु वसुदेववधोद्यमम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; पृष्टः—पूछे जाने पर; भगवता—भगवान् द्वारा; सर्वम्—हर बात; वर्णयाम् आस—बतलाया; माधवः—मधु का वंशज, अक्रूर ने; वैर-अनुबन्धम्—शत्रुवत् मनोभाव; यदुषु—यदुओं के प्रति; वसुदेव—वसुदेव की; वध—हत्या करने का; उद्यमम्—प्रयास।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : भगवान् के पूछे जाने पर मधुवंशी अक्रूर ने सारी परिस्थिति कह सुनाई जिसमें यदुओं के प्रति कंस की शत्रुता तथा उसके द्वारा वसुदेव के वध का प्रयास भी

सम्मिलित था।

यत्सन्देशो यदर्थं वा दूतः सम्प्रेषितः स्वयम् ।
यदुक्तं नारदेनास्य स्वजन्मानकदुन्दुभेः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

यत्—जिस; सन्देशः—सन्देश सहित; यत्—जिस; अर्थम्—उद्देश्य से; वा—तथा; दूतः—दूत के रूप में; सम्प्रेषितः—भेजा; स्वयम्—अक्रूर; यत्—जो; उक्तम्—कहा गया था; नारदेन—नारद द्वारा; अस्य—उस (कंस) से; स्व—उसका (कृष्ण का); जन्म—जन्म; आनकदुन्दुभेः—वसुदेव से।

अक्रूर को जिस सन्देश को देने के लिए भेजा गया था उसे उन्होंने कह सुनाया। उसने कंस के असली इरादे भी बतला दिये और (यह भी बतला दिया कि) नारद ने किस तरह कंस को सूचित किया कि कृष्ण ने वसुदेव के पुत्र रूप में जन्म लिया है।

श्रुत्वाक्रूरवचः कृष्णो बलश्च परवीरहा ।
प्रहस्य नन्दं पितरं राज्ञा दिष्टं विजज्ञतुः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

श्रुत्वा—सुनकर; अक्रूर-वचः—अक्रूर के वचन; कृष्णः—भगवान् कृष्ण; बलः—बलराम; च—तथा; पर-वीर—प्रतियोगी वीरों का; हा—नष्ट करने वाला; प्रहस्य—हँस कर; नन्दम्—नन्द महाराज से; पितरम्—अपने पिता; राज्ञा—राजा द्वारा; दिष्टम्—आदेश दिया गया; विजज्ञतुः—उन्होंने सूचित किया।

अक्रूर के वचनों को सुनकर वीर प्रतिद्वन्द्वियों का विनाश करने वाले भगवान् कृष्ण तथा भगवान् बलराम हँस पड़े। तब उन्होंने अपने पिता नन्द महाराज को राजा कंस का आदेश बतलाया।

गोपान्समादिशत्सोऽपि गृह्यतां सर्वगोरसः ।
उपायनानि गृह्णीध्वं युज्यन्तां शकटानि च ।
यास्यामः श्वो मधुपुरीं दास्यामो नृपते रसान् ॥ ११ ॥
द्रक्ष्यामः सुमहत्पर्व यान्ति जानपदाः किल ।
एवमाघोषयत्क्षत्रा नन्दगोपः स्वगोकुले ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

गोपान्—ग्वालों को; समादिशात्—आदेश दिया; सः—उस (नन्द महाराज) ने; अपि—भी; गृह्यताम्—एकत्र कर लिया है; सर्व—सारा; गो-रसः—दुग्ध के बने पदार्थ; उपायनानि—उत्तम उपहार; गृह्णीध्वम्—ले लो; युज्यन्ताम्—जोत दो; शकटानि—छकड़े; च—तथा; यास्यामः—हम चलेंगे; श्वः—कल; मधु-पुरीम्—मथुरा को; दास्यामः—हम देंगे; नृपतेः—राजा को; रसान्—दुग्ध उत्पाद; द्रक्ष्यामः—हम देखेंगे; सु-महत्—अत्यन्त महान; पर्व—उत्सव; यान्ति—जा रहे हैं; जानपदाः—सुदूर जिलों के निवासी; किल—निस्सन्देह; एवम्—इस प्रकार; आघोषयत्—उसने घोषणा करा दी थी; क्षत्रा—गाँव के मुखिया द्वारा; नन्द-गोपः—नन्द महाराज; स्व-गोकुले—अपने गोकुल के लोगों से।

तब नन्द महाराज ने गाँव के मुखिया को बुलाकर नन्द के व्रज मंडल में ग्वालों के लिए निम्नलिखित घोषणा करने के लिए आदेश दिया, ''जाओ और जितना दूध-दही उपलब्ध हो सके एकत्र करो। बहुमूल्य उपहार ले लो और अपने-अपने छकड़े जोत लो। कल हम लोग मथुरा जायेंगे और राजा को अपना दूध-दही भेंट करेंगे तथा महान् उत्सव देखेंगे। समस्त पड़ोसी जिलों के निवासी भी इसमें जा रहे हैं।''

तात्पर्य : नन्द चाहते थे कि राजा के लिए कर के रूप में घी तथा दूध से बनी दूसरी वस्तुएँ ले जाई जाँय।

गोप्यस्तास्तदुपश्रुत्य बभूवुर्व्यथिता भृशम् ।
रामकृष्णौ पुरीं नेतुमक्रूरं व्रजमागतम् ॥ १३॥

शब्दार्थ

गोप्यः—गोपियाँ; ताः—वे; तत्—तब; उपश्रुत्य—सुनकर; बभूवुः—हो गईं; व्यथिताः—खिन्न; भृशम्—अत्यधिक; राम-कृष्णौ—बलराम तथा कृष्ण; पुरीम्—नगर में; नेतुम्—ले जाने के लिए; अक्रूरम्—अक्रूर को; व्रजम्—वृन्दावन में; आगतम्—आया हुआ।

जब गोपियों ने सुना कि अक्रूर कृष्ण तथा बलराम को नगर ले जाने के लिए व्रज में आये हैं, तो वे अत्यन्त खिन्न हो उठीं।

काश्चित्तत्कृतहृत्ताप श्वासम्लानमुखश्रियः ।
स्त्रंसद्दुकूलवलय केशग्रन्थ्यश्च काश्चन ॥ १४॥

शब्दार्थ

काश्चित्—उनमें से कुछ; तत्—उससे (सुनने से); कृत—उत्पन्न; हृत्—हृदयों में; ताप—पीड़ा से; श्वास—सिसकने से; म्लान—पीली हुई; मुख—उनके मुखों की; श्रियः—कान्ति; स्त्रंसत्—शिथिल हुए; दुकूल—वस्त्र; वलय—कंगन; केश—बालों में; ग्रन्थ्यः—लटें; च—तथा; काश्चन—अन्य।

कुछ गोपियों ने अपने हृदय में इतनी पीड़ा का अनुभव किया कि सिसकियाँ ले लेकर उनके मुख पीले पड़ गये। अन्य गोपियाँ इतनी अधिक पीड़ित थीं कि उनके वस्त्र, बाजूबंद तथा जूड़े शिथिल पड़ गये।

अन्याश्च तदनुध्यान निवृत्ताशेषवृत्तयः ।
नाभ्यजानन्निमं लोकमात्मलोकं गता इव ॥ १५॥

शब्दार्थ

अन्याः—दूसरी; च—तथा; तत्—उनका; अनुध्यान—स्थिर ध्यान करने से; निवृत्त—बन्द किया हुआ; अशेष—सारे; वृत्तयः—इन्द्रियों के कार्य; न अभ्यजानन्—न जानती हुईं; इमम्—इस; लोकम्—लोक का; आत्म—आत्म-साक्षात्कार के; लोकम्—लोक में; गताः—प्राप्त हुई; इव—मानो।

अन्य गोपियों की चित्तवृत्तियाँ पूरी तरह रुक गईं और वे कृष्ण के ध्यान में स्थिर हो गईं। उन्हें आत्मसाक्षात्कार-पद प्राप्त करने वालों की भाँति बाह्य-जगत की सारी सुधि-बुधि भूल गई।

तात्पर्य : गोपियाँ पहले से ही आत्म-साक्षात्कार-पद को प्राप्त थीं। *श्रीचैतन्य-चरितामृत* (मध्य २०.१०८) में कहा गया है—*जीवेर स्वरूप हय कृष्णेर नित्य-दास*—आत्मा या जीव कृष्ण का नित्य दास है। चूँकि गोपियाँ कृष्ण की गहनतम प्रेमाभक्ति कर रही थीं अतएव वे आत्म-साक्षात्कार के सर्वोच्च पद पर स्थित थीं।

स्मरन्त्यश्चापराः शौरेरनुरागस्मितेरिताः ।
हृदिस्पृशश्चित्रपदा गिरः सम्मुमुहुः स्त्रियः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

स्मरन्त्यः—स्मरण करतीं; च—तथा; अपराः—अन्य; शौरेः—कृष्ण का; अनुराग—स्नेहिल; स्मित—उनकी हँसी से; ईरिताः—भेजी गई; हृदि—हृदय में; स्पृशः—स्पर्श करती; चित्र—विचित्र; पदाः—वाक्यांशों से; गिरः—वाणी; सम्मुमुहुः—अचेत; स्त्रियः—स्त्रियाँ।

और कुछ तरुणियाँ भगवान् शौरि (कृष्ण) के शब्दों का स्मरण करके ही अचेत हो गईं। ये शब्द विचित्र पदों से अलंकृत तथा स्नेहमयी मुसकान से व्यक्त होने से उन तरुणियों के हृदयों का गम्भीरता से स्पर्श करने वाले होते थे।

गतिं सुललितां चेष्टां स्निग्धहासावलोकनम् ।
शोकापहानि नर्माणि प्रोद्दामचरितानि च ॥ १७॥
चिन्तयन्त्यो मुकुन्दस्य भीता विरहकातराः ।
समेताः सङ्घशः प्रोचुरश्रुमुख्योऽच्युताशयाः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

गतिम्—चाल; सु-ललिताम्—अत्यन्त आकर्षक; चेष्टाम्—चेष्टाएँ; स्निग्ध—स्नेहिल; हास—हँसी; अवलोकनम्—चितवनें; शोक—दुख; अपहानि—दूर करने वाली; नर्माणि—ठिठोलियाँ; प्रोद्दाम—विशाल; चरितानि—कार्यकलाप; च—तथा; चिन्तयन्त्यः—सोचती हुई; मुकुन्दस्य—भगवान् कृष्ण के; भीताः—भयभीत; विरह—विरह के कारण; कातराः—अत्यन्त दुखी; समेताः—एकसाथ मिलकर; सङ्घशः—टोली में; प्रोचुः—बोलीं; अश्रु—आँसू से युक्त; मुख्यः—मुख; अच्युत-आशयाः—भगवान् अच्युत में लीन मन वाली।

गोपियाँ भगवान् मुकुन्द के क्षणमात्र वियोग की आशंका से भी भयातुर थीं अतः जब उन्हें उनकी ललित चाल, उनकी लीलाओं, उनकी स्नेहिल हँसीली चितवन, उनके वीरतापूर्ण कार्यों

तथा दुख हरने वाली ठिठोलियों का स्मरण हो आया तो वे सम्भाव्य परम विरह के विचार से उत्पन्न चिंता में अपने आपे के बाहर हो गईं। वे झुंड की झुंड एकत्र होकर एक-दूसरे से बातें करने लगीं। उनके मुख आँसुओं से पूरित थे तथा उनके मन अच्युत में पूर्णतया लीन थे।

श्रीगोप्य ऊचुः
अहो विधातस्तव न क्वचिद्दया
संयोज्य मैत्र्या प्रणयेन देहिनः ।
तांश्चाकृतार्थान्वियुनङ्क्ष्यपार्थकं
विक्रीडितं तेऽर्भकचेष्टितं यथा ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

श्री-गोप्यः ऊचुः—गोपियों ने कहा; अहो—ओह; विधातः—विधाता; तव—तुम्हारा; न—नहीं है; क्वचित्—कहीं भी; दया—दया; संयोज्य—मिलाकर; मैत्र्या—मित्रता से; प्रणयेन—तथा प्रेम से; देहिनः—देहधारी जीवों को; तान्—उन; च—तथा; अकृत—अधूरे; अर्थान्—उद्देश्य; वियुनङ्क्षि—विलग कर देते हो; अपार्थकम्—व्यर्थ ही; विक्रीडितम्—खेल; ते—तुम्हारा; अर्भक—बच्चे की; चेष्टितम्—चेष्टा; यथा—जिस तरह।

गोपियों ने कहा : हे विधाता, आपमें तनिक भी दया नहीं है। आप देहधारी प्राणियों को मैत्री तथा प्रेम द्वारा एक-दूसरे के पास लाते हैं और तब उनकी इच्छाओं के पूरा होने के पूर्व ही व्यर्थ में उन्हें विलग कर देते हैं। आपका यह भ्रमपूर्ण खेलवाड़ बच्चों की चेष्टा के समान है।

यस्त्वं प्रदर्श्यासितकुन्तलावृतं
मुकुन्दवक्त्रं सुकपोलमुन्नसम् ।
शोकापनोदस्मितलेशसुन्दरं
करोषि पारोक्ष्यमसाधु ते कृतम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

यः—जो; त्वम्—तुम; प्रदर्श्य—दिखलाकर; असित—श्याम; कुन्तल—घुँघराले बालों से; आवृतम्—ढका; मुकुन्द—कृष्ण का; वक्त्रम्—मुखमण्डल; सु-कपोलम्—सुन्दर कपोलों से युक्त; उत्-नसम्—तथा उठी हुई नाक; शोक—शोक; अपनोद—समूल नष्ट करने वाली; स्मित—अपनी हँसी से; लेश—तनिक; सुन्दरम्—सुन्दर; करोषि—करते हो; पारोक्ष्यम्—अदृष्ट; असाधु—बुरा; ते—तुम्हारे द्वारा; कृतम्—किया गया।

श्याम घुँघराले बालों से घिरा तथा सुन्दर गालों से सुशोभित, उठी हुई नाक तथा समस्त कष्टों को हरने वाली मृदु हँसी से युक्त, मुकुन्द के मुख को दिखलाने के बाद अब आप उस मुख को हमसे ओझल करने जा रहे हैं। आपका यह वर्ताव तनिक भी अच्छा नहीं है।

क्रूरस्त्वमक्रूरसमाख्यया स्म न-

श्वक्षुर्हि दत्तं हरसे बताज्ञवत् ।
येनैकदेशेऽखिलसर्गसौष्ठवं
त्वदीयमद्राक्ष्म वयं मधुद्विषः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

क्रूरः—क्रूर; त्वम्—तुम (हो); अक्रूर-समाख्यया—अक्रूर नाम से जाने जाने वाले (जिसका अर्थ है, जो क्रूर नहीं है); स्म—निश्चय ही; नः—हमारी; चक्षुः—आँखें; हि—निस्सन्देह; दत्तम्—दिया गया; हरसे—छीने ले रहे हो; बत—हाय; अज्ञ—मूर्ख; वत्—सदृश; येन—जिन (आँखों) से; एक—एक; देशे—स्थान में; अखिल—समस्त; सर्ग—सृष्टि की; सौष्ठवम्—पूर्णता; त्वदीयम्—आपका; अद्राक्ष्म—देख चुकीं; वयम्—हम; मधुद्विषः—मधु असुर के शत्रु, भगवान् कृष्ण का।

हे विधाता, यद्यपि आप यहाँ अक्रूर के नाम से आये हैं किन्तु हैं आप क्रूर क्योंकि आप मूर्खों के समान हमसे उन्हें ही छीने ले रहे हैं, जिन्हें कभी आपने हमें दिया था—हमारी वे आँखें जिनसे हमने भगवान् मधुद्विष के रूप के उस एक में भी आपकी सम्पूर्ण सृष्टि की पूर्णता देखी है।

तात्पर्य : गोपियाँ कृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु को देखने की परवाह नहीं करती थीं। अतएव यदि कृष्ण वृन्दावन से चले जायेंगे तो उनके नेत्रों के लिए कोई कार्य ही नहीं रह जायेगा। इस तरह कृष्ण का जाना बेचारी गोपियों को अंधा बनाये दे रहा था और अपने शोक के कारण वे अक्रूर को जिनके नाम का अर्थ है ''क्रूर नहीं'' क्रूर कहे डाल रही थीं।

न नन्दसूनुः क्षणभङ्गसौहृदः
समीक्षते नः स्वकृतातुरा बत ।
विहाय गेहान्स्वजनान्सुतान्पतीं-
स्तद्दास्यमद्धोपगता नवप्रियः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; नन्द-सूनुः—नन्द महाराज का पुत्र; क्षण—एक क्षण में; भङ्ग—तोड़ना; सौहृदः—जिसकी मैत्री का; समीक्षते—देखते हैं; नः—हमको; स्व—अपने द्वारा; कृत—बनाया गया; आतुराः—अपने वश में; बत—हाय; विहाय—छोड़कर; गेहान्—हमारे घरों को; स्व-जनान्—सम्बन्धियों को; सुतान्—बालकों को; पतीन्—पतियों को; तत्—उसके प्रति; दास्यम्—दासता; अद्धा—प्रत्यक्ष; उपगताः—ग्रहण की हुई; नव—नये नये; प्रियः—प्रेमी।

हाय! क्षण-भर में प्रेमपूर्ण मैत्री को भंग करने वाला नन्द का बेटा अब हमको सीधे एकटक देख भी नहीं सकेगा। उसके वशीभूत होकर उसकी सेवा करने के लिए हमने अपने घरों, सम्बन्धियों, बच्चों तथा पतियों तक का परित्याग कर दिया किन्तु वह सदैव नितनये प्रेमियों की खोज में रहता है।

सुखं प्रभाता रजनीयमाशिष:
सत्या बभूवु: पुरयोषितां ध्रुवम् ।
या: संप्रविष्टस्य मुखं व्रजस्पते:
पास्यन्त्यपाङ्गोत्कलितस्मितासवम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

सुखम्—सुखमय; प्रभाता—प्रात:काल; रजनी—रात का; इयम्—यह; आशिष:—आशाएँ; सत्या:—सच; बभूवु:—हो चुकी हैं; पुर—नगर की; योषिताम्—स्त्रियों के; ध्रुवम्—निश्चय ही; या:—जो; संप्रविष्टस्य—(मथुरा में) प्रवेश किये हुए का; मुखम्—मुख; व्रज:-पते:—व्रज के स्वामी का; पास्यन्ति—पीयेंगी; अपाङ्ग—तिरछी चितवन; उत्कलित—फैली हुई; स्मित—हँसी; आसवम्—अमृत।

इस रात्रि के बाद का प्रात:काल निश्चित रूप से मथुरा की स्त्रियों के लिए मंगलमय होगा। अब उनकी सारी आशाएँ पूरी हो जायेंगी क्योंकि जैसे ही व्रजपति उनके नगर में प्रवेश करेंगे वे उनके मुख की तिरछी चितवन से निकलने वाली हँसी के अमृत का पान कर सकेंगी।

तासां मुकुन्दो मधुमञ्जुभाषितै-
र्गृहीतचित्त: परवान्मनस्व्यपि ।
कथं पुनर्न: प्रतियास्यतेऽबला
ग्राम्या: सलज्जस्मितविभ्रमैर्भ्रमन् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

तासाम्—उनके; मुकुन्द:—कृष्ण; मधु—शहद सदृश; मञ्जु—मीठी; भाषितै:—वाणी से; गृहीत—वशीभूत; चित्त:—मन; परवान्—पराधीन; मनस्वी—बुद्धिमान; अपि—यद्यपि; कथम्—कैसे; पुन:—फिर; न:—हमको; प्रतियास्यते—लौटेगा; अबला:—हे बालाओं; ग्राम्या:—ग्रामीण; स-लज्ज—लजीली; स्मित—हँसती हुई; विभ्रमै:—वशीकरण से; भ्रमन्—मुग्ध हुई।

हे गोपियो, यद्यपि हमारा मुकुन्द बुद्धिमान तथा अपने माता-पिता का अत्यन्त आज्ञाकारी है किन्तु एक बार मथुरा की स्त्रियों के मधु सदृश मीठे शब्दों के जादू में आ जाने और उनकी आकर्षक लजीली मुसकानों से मुग्ध हो जाने पर भला वह हम गँवार देहाती अबलाओं के पास फिर कभी क्यों लौटने लगा?

अद्य ध्रुवं तत्र दृशो भविष्यते
दाशार्हभोजान्धकवृष्णिसात्वताम् ।
महोत्सव: श्रीरमणं गुणास्पदं
द्रक्ष्यन्ति ये चाध्वनि देवकीसुतम् ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

अद्य—आज; ध्रुवम्—निश्चय ही; तत्र—वहाँ; दृश:—आँखों के लिए; भविष्यते—होगा; दाशार्ह-भोज-अन्धक-वृष्णि-सात्वताम्—दाशार्ह, भोज, अन्धक, वृष्णि तथा सात्वत वंशों के सदस्यों के; महा-उत्सव:—महान् उत्सव; श्री—लक्ष्मीजी का; रमणम्—प्रिय; गुण—सारे दिव्य गुणों का; आस्पदम्—आगार, भण्डार; द्रक्ष्यन्ति—देखेंगे; ये—जो; च—भी; अध्वनि—मार्ग पर; देवकी-सुतम्—देवकीपुत्र, श्रीकृष्ण को।

जब दाशार्ह, भोज, अन्धक, वृष्णि तथा सात्वत लोग मथुरा में देवकी के पुत्र को देखेंगे तो उनके नेत्रों के लिए महान् उत्सव तो होगा ही, साथ ही साथ नगर के मार्ग में यात्रा करते हुए जो लोग उन्हें देखेंगे उनके लिए भी महान् उत्सव होगा। आखिर, वे श्री लक्ष्मीजी के प्रियतम और समस्त दिव्य गुणों के आगार जो हैं।

मैतद्विधस्याकरुणस्य नाम भू-
दक्रूर इत्येतदतीव दारुणः ।
योऽसावनाश्वास्य सुदुःखितम्जनं
प्रियात्प्रियं नेष्यति पारमध्वनः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

मा—मत; एतत्-विधस्य—ऐसे; अकरुणस्य—क्रूर व्यक्ति का; नाम—नाम; भूत्—होये; अक्रूरः इति—अक्रूर; एतत्—यह; अतीव—अत्यन्त; दारुणः—क्रूर; यः—जो; असौ—वह; अनाश्वास्य—धीरज धराते हुए; सु-दुःखितम्—अत्यन्त दुखी; जनम्—लोगों को; प्रियात्—प्रियतम् से अधिक; प्रियम्—प्रिय (कृष्ण); नेष्यति—ले जायेगा; पारम् अध्वनः—हमारी दृष्टि से परे।

जो ऐसा निर्दय कार्य कर रहा हो उसे अक्रूर नहीं कहलाया जाना चाहिए। वह इतना क्रूर है कि व्रज के दुखी निवासियों को धीरज धराने का प्रयास किए बिना ही उस कृष्ण को लिये जा रहा है, जो हमारे प्राणों से भी हमें अधिक प्रिय है।

अनार्द्रधीरेष समास्थितो रथं
तमन्वमी च त्वरयन्ति दुर्मदाः ।
गोपा अनोभिः स्थविरैरुपेक्षितं
दैवं च नोऽद्य प्रतिकूलमीहते ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

अनार्द्र-धीः—निष्ठुर; एषः—यह (कृष्ण); समास्थितः—आसीन होकर; रथम्—रथ में; तम्—उसको; अनु—पीछे चलने वाले; अमी—ये; च—तथा; त्वरयन्ति—जल्दबाजी; दुर्मदाः—बेवकूफ बनाये गये; गोपाः—ग्वाले; अनोभिः—अपनी बैलगाड़ियों में; स्थविरैः—वृद्धजनों द्वारा; उपेक्षितम्—उपेक्षित; दैवम्—भाग्य को; च—तथा; नः—हमारे साथ; अद्य—आज; प्रतिकूलम्—विपरीत; ईहते—कार्य कर रहा है।

निष्ठुर कृष्ण पहले ही रथ पर चढ़ चुके हैं और अब ये मूर्ख ग्वाले अपनी बैलगाड़ियों में उनके पीछे पीछे जाने की जल्दी मचा रहे हैं। यहाँ तक कि बड़े-बूढ़े भी उन्हें रोकने के लिए कुछ भी नहीं कह रहे। आज भाग्य हमारे विपरीत कार्य कर रहा है।

तात्पर्य : गोपियों ने जो कुछ सोचा उसे श्रील श्रीधर स्वामी इस प्रकार उदघाटित करते हैं: ''ये मूर्ख ग्वाले तथा बड़े-बूढ़े कृष्ण को रोकने का प्रयास तक नहीं कर रहे हैं। क्या उन्हें ऐसा नहीं लगता

कि वे आत्महत्या कर रहे हैं? वे कृष्ण के मथुरा जाने में सहायक बन रहे हैं किन्तु उन्हें वृन्दावन लौटकर आना पड़ेगा। तब वे निश्चित रूप से कृष्ण की अनुपस्थिति में मर जायेंगे। सारे जगत की मति मारी गई है।''

निवारयामः समुपेत्य माधवं
किं नोऽकरिष्यन्कुलवृद्धबान्धवाः ।
मुकुन्दसङ्गान्निमिषार्धदुस्त्यजाद्
दैवेन विध्वंसितदीनचेतसाम् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

निवारयामः—चलो हम रोकें; समुपेत्य—पास जाकर; माधवम्—कृष्ण को; किम्—क्या; नः—हमारा; अकरिष्यन्—करेंगे; कुल—परिवार के; वृद्ध—बूढ़े लोग; बान्धवाः—तथा हमारे सम्बन्धीजन; मुकुन्द-सङ्गात्—भगवान् मुकुन्द के साथ से; निमिष—पलक झाँपने के; अर्ध—आधा; दुस्त्यजात्—जिसे त्यागना असम्भव है; दैवेन—भाग्य द्वारा; विध्वंसित—विलग किया गया; दीन—दुखियारा; चेतसाम्—हृदयों वाले।

चलो हम सीधे माधव के पास चलें और उन्हें जाने से रोकें। हमारे परिवार के बड़े-बूढ़े तथा अन्य सम्बन्धीजन हमारा क्या बिगाड़ सकते हैं? अब जबकि भाग्य हमें मुकुन्द से विलग कर रहा है, हमारे हृदय पहले से ही दुखित हैं क्योंकि हम एक पल के एक अंश के लिए भी उनके संग के त्याग को सहन नहीं कर सकतीं।

तात्पर्य : गोपियों ने जो कुछ सोचा उसका वर्णन श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती करते हैं: ''चलो सीधे कृष्ण के पास चलें और उनके वस्त्र तथा हाथ पकड़कर खींचें तथा हठ करें कि वे रथ से नीचे उतर आयें और हमारे साथ यहीं ठहरें। हम उनसे कहेंगी, ''आप इतनी सारी स्त्रियों की हत्या करने का पाप अपने ऊपर न लें।''

अन्य गोपियों ने कहा, ''यदि हम ऐसा करेंगी तो हमारे सम्बन्धी तथा गाँव के बड़े-बूढ़े कृष्ण के प्रति हमारे गुप्त प्रेम को जान जायेंगे और हमें छोड़ देंगे।''

लेकिन वे हमारा कर ही क्या सकते हैं?''

''हाँ, कृष्ण के जाने से अब हमारे जीवन दुखी बन ही चुके हैं। हमारा कुछ भी नहीं बिगड़ेगा।''

''यह तो ठीक है। हम वृन्दावन के जंगल में अधिष्ठात्री देवियों की तरह रहेंगी और तब हम अपनी सच्ची इच्छा—जंगल में कृष्ण के साथ रहने की इच्छा—पूरी कर सकती हैं।''

''हाँ! यदि हमारे सम्बन्धी तथा बड़े-बूढ़े हमें मार-पीट कर या ताले के भीतर रखकर हमें दण्डित

भी करते हैं, तो भी हम यह जानकर सुखपूर्वक जीवित रह सकती हैं कि कृष्ण हमारे गाँव में रह रहे हैं। हमारी कुछ सहेलियाँ जो बन्दी नहीं हुई हैं, वे हमारे पास तक कृष्ण का जूठन लाने का चतुरता से कोई उपाय ढूँढ़ निकालेंगी और हम जीवित रह सकेंगी। किन्तु यदि कृष्ण को रोका नहीं जाता तो हम अवश्य मर जायेंगी।''

यस्यानुरागललितस्मितवल्गुमन्त्र-
लीलावलोकपरिरम्भणरासगोष्ठाम् ।
नीताः स्म नः क्षणमिव क्षणदा विना तं
गोप्यः कथं न्वतितरेम तमो दुरन्तम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

यस्य—जिसके; अनुराग—स्नेह से; ललित—मनोहर; स्मित—(जहाँ) हँसी (थी); वल्गु—आकर्षक; मन्त्र—घुलमिलकर बातचीत; लीला—क्रीड़ापूर्ण; अवलोक—चितवन; परिरम्भण—तथा आलिंगन; रास—रासनृत्य की; गोष्ठाम्—गोष्ठी को; नीताः स्म—लाई गई; नः—हमारे लिए; क्षणम्—क्षण; इव—सदृश; क्षणदाः—रातें; विना—रहित; तम्—उसके; गोप्यः—हे गोपियो; कथम्—कैसे; नु—निस्सन्देह; अतितरेम—हम पार कर जायेंगी; तमः—अंधकार; दुरन्तम्—दुर्लंघ्य।

जब वे हमें रासनृत्य की गोष्ठी में ले आये जहाँ हमने उनकी स्नेहपूर्ण तथा मनोहर मुसकानें का, उनकी आह्लादकारी गुप्त बातों, उनकी लीलापूर्ण चितवनों तथा उनके आलिंगनों का आनन्द लूटा तब हमने अनेक रात्रियाँ बितायी जो मात्र एक क्षण के तुल्य लगी। हे गोपियो, तो भला हम उनकी अनुपस्थिति के दुर्लंघ्य अंधकार को कैसे पार कर सकती हैं?

तात्पर्य : गोपियों को कृष्ण के संग में दीर्घकाल एक क्षण तुल्य बीत जाता था और उनकी अनुपस्थिति में एक क्षण अत्यन्त दीर्घकाल-सा लग रहा था।

योऽह्नः क्षये व्रजमनन्तसखः परीतो
गोपैर्विशन्खुररजश्छुरितालकस्त्रक् ।
वेणुं क्वणन्स्मितकटाक्षनिरीक्षणेन
चित्तं क्षिणोत्यमुमृते नु कथं भवेम ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

यः—जो; अह्नः—दिन के; क्षये—अन्त होने पर; व्रजम्—व्रज-ग्राम में; अनन्त—अनन्त या बलराम का; सखः—मित्र, कृष्ण; परीतः—चारों ओर से घिरा; गोपैः—ग्वालबालों से; विशन्—प्रवेश करते हुए; खुर—गो-खुरों की; रजः—धूल से; छुरित—धूसरित; अलक—घुँघराले बाल; स्रक्—तथा माला; वेणुम्—बाँसुरी को; क्वणन्—बजाते हुए; स्मित—मन्द हास करते हुए; कट-अक्ष—बाँकी चितवन से; निरीक्षणेन—देखने से; चित्तम्—हमारे मन को; क्षिणोति—नष्ट करता है; अमुम्—उसके; ऋते—बिना; नु—निस्सन्देह; कथम्—कैसे; भवेम—हम जीवित रह सकती हैं।

हम अनन्त के मित्र कृष्ण के बिना भला कैसे जीवित रह सकती हैं? वे शाम को ग्वालबालों

के साथ व्रज लौटा करते थे तो उनके बाल तथा उनकी माला गौवों के खुरों से उठती धूल से धूसरित हो जाते थे। जब वे बाँसुरी बजाते तो वे अपनी हँसीली बाँकी चितवन से हमारे मन को मोह लेते थे।

श्रीशुक उवाच
एवं ब्रुवाणा विरहातुरा भृशं
व्रजस्त्रियः कृष्णविषक्तमानसाः ।
विसृज्य लज्जां रुरुदुः स्म सुस्वरं
गोविन्द दामोदर माधवेति ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; ब्रुवाणाः—बोलती हुई; विरह—वियोग की भावनाओं से; आतुराः—व्याकुल; भृशम्—नितान्त; व्रज-स्त्रियः—व्रज की स्त्रियाँ; कृष्ण—कृष्ण से; विषक्त—अनुरक्त; मानसाः—मन वाली; विसृज्य—त्यागकर; लज्जाम्—लज्जा; रुरुदुः स्म—चिल्लाने लगीं; सु-स्वरम्—जोर जोर से; गोविन्द दामोदर माधव इति—हे गोविन्द, हे दामोदर, हे माधव।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इन शब्दों को कहने के बाद व्रज की स्त्रियाँ, जो कृष्ण के प्रति इतनी अनुरक्त थीं, उनके आसन्न वियोग से अत्यन्त क्षुब्ध हो उठीं। वे सारी लाज-हया भूल गईं और जोरों से ''हे गोविन्द, हे दामोदर, हे माधव,'' चिल्ला उठीं।

तात्पर्य : दीर्घकाल तक गोपियों ने कृष्ण के प्रति अपने माधुर्य-प्रेम को छिपा रखा था। किन्तु अब जब कृष्ण विदा हो रहे थे तो गापियाँ इतनी व्यग्र हो उठी थीं कि वे अपने मनोभावों को छिपा न पाईं।

स्त्रीणामेवं रुदन्तीनामुदिते सवितर्यथ ।
अक्रूरश्चोदयामास कृतमैत्रादिको रथम् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

स्त्रीणाम्—स्त्रियों के; एवम्—इस प्रकार से; रुदन्तीनाम्—रुदन करती हुई; उदिते—उदय होते हुए; सवितरि—सूर्य; अथ—तब; अक्रूरः—अक्रूर; चोदयाम् आस—चल पड़ा; कृत—पूरा करके; मैत्र-आदिकः—प्रातःकालीन पूजा तथा नैतिक कार्य; रथम्—रथ पर।

किन्तु गोपियों द्वारा इस प्रकार क्रन्दन करते रहने पर भी अक्रूर प्रातःकालीन पूजा तथा अन्य कार्य समाप्त करके अपना रथ हाँकने लगे।

तात्पर्य : कुछ वैष्णव आचार्यों के अनुसार कृष्ण को मथुरा ले जाते समय अक्रूर ने गोपियों को सान्त्वना न देकर अपराध किया। इसी अपराध के कारण अक्रूर को बाद में जबरन द्वारका छोड़ना पड़ा और स्यमन्तक मणि की घटना के समय कृष्ण से विलग होना पड़ा। उस समय अक्रूर को वाराणसी के

एक घृणित स्थान में वास करना पड़ा था।

देखने में आया कि माता यशोदा तथा वृन्दावन के अन्य वासी इन गोपियों की तरह चिल्ला नहीं रहे थे क्योंकि उनका दृढ़ विश्वास था कि कृष्ण कुछ ही दिनों में लौट आयेंगे।

गोपास्तमन्वसज्जन्त नन्दाद्याः शकटैस्ततः ।
आदायोपायनं भूरि कुम्भान्गोरससम्भृतान् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

गोपाः—ग्वालों ने; तम्—उसका; अन्वसज्जन्त—पीछा किया; नन्द-आद्याः—नन्द इत्यादि; शकटैः—अपने छकड़ों में; ततः—तब; आदाय—ले लेकर; उपायनम्—भेंटें; भूरि—प्रचुर; कुम्भान्—घड़े; गो-रस—दूध की बनी वस्तुएँ; सम्भृतान्—भरी हुई।

नन्द महाराज को आगे करके ग्वाले अपने अपने छकड़ों में भगवान् कृष्ण के पीछे पीछे हो लिये। ये लोग अपने साथ राजा के लिए अनेक भेंटें लिये हुए थे जिनमें घी तथा अन्य दुग्ध उत्पादों से भरे हुए मिट्टी के घड़े सम्मिलित थे।

गोप्यश्च दयितं कृष्णमनुव्रज्यानुरञ्जिताः ।
प्रत्यादेशं भगवतः काङ्क्षन्त्यश्चावतस्थिरे ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

गोप्यः—गोपियाँ; च—तथा; दयितम्—अपने प्रियतम; कृष्णम्—कृष्ण के; अनुव्रज्य—पीछे पीछे चलकर; अनुरञ्जिताः—प्रसन्न; प्रत्यादेशम्—बदले में कुछ आदेश; भगवतः—भगवान् से; काङ्क्षन्त्यः—आकांक्षा करती हुईं; च—तथा; अवतस्थिरे—खड़ी रहीं।

भगवान् कृष्ण ने (अपनी चितवन से) गोपियों को कुछ कुछ ढाढस बँधाया और वे भी कुछ देर तक उनके पीछे पीछे चलीं। फिर इस आशा से वे बिना हिले-डुले खड़ी रहीं कि वे उन्हें कुछ आदेश देंगे।

तास्तथा तप्यतीर्वीक्ष्य स्वप्रस्थाणे यदूत्तमः ।
सान्त्वयामस सप्रेमैरायास्य इति दौत्यकैः ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

ताः—उन्हें (गोपियों को); तथा—इस तरह; तप्यतीः—विलाप करती; वीक्ष्य—देखकर; स्व-प्रस्थाने—अपने विदा होते समय; यदु-उत्तमः—यदुओं में श्रेष्ठ; सान्त्वयाम् आस—उन्हें ढाढ़स बँधाया; स-प्रेमैः—प्रेम से युक्त होकर; आयास्ये इति—''मैं वापस आऊँगा''; दौत्यकैः—दूत से भेजे गये शब्दों से।

जब वे विदा होने लगे तो उन यदुश्रेष्ठ ने देखा कि गोपियाँ किस तरह विलाप कर रही थीं। अतः उन्होंने एक दूत भेजकर यह प्रेमपूर्ण वादा भेजा कि ''मैं वापस आऊँगा'' इस प्रकार उन्हें

सान्त्वना प्रदान की।

यावदालक्ष्यते केतुर्यावद्रेणू रथस्य च ।
अनुप्रस्थापितात्मानो लेख्यानीवोपलक्षिताः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

यावत्—जब तक; आलक्ष्यते—दिखाई देता रहा; केतुः—ध्वजा; यावत्—जब तक; रेणुः—धूल; रथस्य—रथ की; च—तथा; अनुप्रस्थापित—पीछे पीछे भेजती हुईं; आत्मानः—अपने मनों को; लेख्यानि—लिखित चित्रों; इव—सदृश; उपलक्षिताः—प्रकट हो रही थीं।

गोपियाँ अपने अपने मन को कृष्ण के साथ भेजकर, किसी चित्र में बनी आकृतियों की भाँति निश्चेष्ट खड़ी रहीं। वे वहाँ तब तक खड़ी रहीं जब तक रथ के ऊपर की पताक दिखती रही और जब तक रथ के पहियों से उठी हुई धूल उन्हें दिखलाई पड़ती रही।

ता निराशा निववृतुर्गोविन्दविनिवर्तने ।
विशोका अहनी निन्युर्गायन्त्यः प्रियचेष्टितम् ॥ ३७॥

शब्दार्थ

ताः—वे; निराशाः—आशारहित; निववृतुः—लौट आईं; गोविन्द-विनिवर्तने—गोविन्द की वापसी का; विशोकाः—अत्यन्त दुखी; अहनी—दिन तथा रात; निन्युः—बिताया; गायन्त्यः—कीर्तन करते; प्रिय—अपने प्रियतम की; चेष्टितम्—लीलाओं या कार्यकलापों के विषय में।

तब गोपियाँ निराश होकर लौट गईं। उन्हें इसकी आशा नहीं रही कि गोविन्द उनके पास कभी लौटेंगे भी। वे शोकाकुल होकर अपने प्रिय की लीलाओं का कीर्तन करती हुईं अपने दिन और रातें बिताने लगीं।

भगवानपि सम्प्राप्तो रामाक्रूरयुतो नृप ।
रथेन वायुवेगेन कालिन्दीमघनाशिनीम् ॥ ३८॥

शब्दार्थ

भगवान्—भगवान्; अपि—तथा; सम्प्राप्तः—पहुँचे; राम-अक्रूर-युतः—बलराम तथा अक्रूर के साथ; नृप—हे राजा (परीक्षित); रथेन—रथ के द्वारा; वायु—वायु जैसे; वेगेन—तेज; कालिन्दीम्—कालिन्दी (यमुना) पर; अघ—पाप; नाशिनीम्—नष्ट करने वाली।

हे राजन्, भगवान् कृष्ण भगवान् बलराम तथा अक्रूर समेत उस रथ में वायु जैसी तेजी से यात्रा करते हुए सारे पापों को विनष्ट करने वाली कालिन्दी नदी पर पहुँचे।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी की टीका है कि भगवान् कृष्ण चुपके-चुपके गोपियों से अपने विरह पर पछताते रहे। भगवान् की ये दिव्य अनुभूतियाँ उनकी परम ह्लादिनी शक्ति की अंश रूप हैं।

तत्रोपस्पृश्य पानीयं पीत्वा मृष्टं मणिप्रभम् ।
वृक्षषण्डमुपव्रज्य सरामो रथमाविशत् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; उपस्पृश्य—जल का स्पर्श करके; पानीयम्—अपने हाथ में; पीत्वा—पीकर; मृष्टम्—मधुर; मणि—मणियों के तुल्य; प्रभम्—तेजयुक्त; वृक्ष—वृक्षों के; षण्डम्—कुंज; उपव्रज्य—के पास चलकर; स-रामः—बलराम सहित; रथम्—रथ में; आविशत्—सवार हो गये।

नदी का मधुर जल चमकीली मणियों से भी अधिक तेजवान था। भगवान् कृष्ण ने शुद्धि के लिए जल से मार्जन किया और हाथ में लेकर आचमन किया। तत्पश्चात् अपने रथ को एक वृक्ष-कुंज के पास मँगाकर बलराम सहित उस पर पुनः सवार हो गये।

अक्रूरस्तावुपामन्त्र्य निवेश्य च रथोपरि ।
कालिन्द्या ह्रदमागत्य स्नानं विधिवदाचरत् ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

अक्रूरः—अक्रूर; तौ—उन दोनों से; उपामन्त्र्य—अनुमति लेकर; निवेश्य—उन्हें बैठाकर; च—तथा; रथ-उपरि—रथ पर; कालिन्द्याः—यमुना के; ह्रदम्—कुंड में; आगत्य—जाकर; स्नानम्—स्नान; विधि-वत्—शास्त्रीय विधि के अनुसार; आचरत्—पूरा किया।

अक्रूर ने दोनों भाइयों से रथ पर बैठने के लिये कहा। तत्पश्चात् उनसे अनुमति लेकर वे यमुना कुंड में गये और शास्त्रों में निर्दिष्ट विधि के अनुसार स्नान किया।

निमज्य तस्मिन्सलिले जपन्ब्रह्म सनातनम् ।
तावेव ददृशेऽक्रूरो रामकृष्णौ समन्वितौ ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

निमज्य—घुसकर; तस्मिन्—उस; सलिले—जल में; जपन्—उच्चारण करते हुए; ब्रह्म—वैदिक मंत्र; सनातनम्—नित्य; तौ—दोनों ने; एव—निस्सन्देह; ददृशे—देखा; अक्रूरः—अक्रूर ने; राम-कृष्णौ—बलराम तथा कृष्ण; समन्वितौ—साथ साथ।

जल में प्रविष्ट होकर वेदों से नित्य मंत्रों का जप करते हुए अक्रूर ने सहसा बलराम तथा कृष्ण को अपने सम्मुख देखा।

तौ रथस्थौ कथमिह सुतावानकदुन्दुभेः ।
तर्हि स्वित्स्यन्दने न स्त इत्युन्मज्य व्यचष्ट सः ॥ ४२ ॥
तत्रापि च यथापूर्वमासीनौ पुनरेव सः ।
न्यमज्जद्दर्शनं यन्मे मृषा किं सलिले तयोः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

तौ—वे दोनों; रथ-स्थौ—रथ पर आसीन; कथम्—कैसे; इह—यहाँ; सुतौ—दोनों पुत्र; आनकदुन्दुभेः—वसुदेव के; तर्हि—तब; स्वित्—क्या; स्यन्दने—रथ पर; न स्तः—नहीं हैं; इति—यह सोचते हुए; उन्मज्य—जल से निकलकर; व्यचष्ट—देखा; सः—उसने; तत्र अपि—उसी स्थान पर; च—तथा; यथा—जिस तरह; पूर्वम्—पहले; आसीनौ—बैठे हुए; पुनः—फिर से; एव—निस्सन्देह; सः—वह; न्यमज्जत्—जल में घुस गया; दर्शनम्—दर्शन; यत्—यदि; मे—मेरा; मृषा—झूठ; किम्—शायद; सलिले—जल में; तयोः—उन दोनों का।

अक्रूर ने सोचा: ''आनकदुन्दुभि के दोनों पुत्र, जो कि रथ पर बैठे हैं यहाँ जल में किस तरह खड़े हो सकते हैं? अवश्य ही उन्होंने रथ छोड़ दिया होगा।'' किन्तु जब वे नदी से निकलकर बाहर आये तो वे दोनों पहले की तरह रथ पर थे। अपने आप यह प्रश्न करते हुए कि ''क्या जल में मैने उनका जो दर्शन किया वह भ्रम था?'' अक्रूर पुनः कुंड में प्रविष्ट हो गये।

भूयस्तत्रापि सोऽद्राक्षीत्स्तूयमानमहीश्वरम् ।
सिद्धचारणगन्धर्वैरसुरैर्नतकन्धरैः ॥ ४४॥
सहस्त्रशिरसं देवं सहस्त्रफणमौलिनम् ।
नीलाम्बरं विसश्वेतं शृङ्गैः श्वेतमिव स्थितम् ॥ ४५॥

शब्दार्थ

भूयः—पुनः; तत्र अपि—उसी स्थान पर; सः—उसने; अद्राक्षीत्—देखा; स्तूयमानम्—स्तुति किये जाते; अहि-ईश्वरम्—सर्पों के स्वामी (अनन्त शेष जो कि बलराम के स्वांश हैं और विष्णु की शय्या रूप हैं); सिद्ध-चारण-गन्धर्वैः—सिद्धों, चारणों तथा गन्धर्वों द्वारा; असुरैः—तथा असुरों द्वारा; नत—झुका हुआ; कन्धरैः—गर्दनों से; सहस्त्र—हजारों; शिरसम्—सिर वाले; देवम्—भगवान् को; सहस्त्र—हजारों; फण—फणों से; मौलिनम्—और मुकुट; नील—नीला; अम्बरम्—वस्त्र; विस—कमल-नालके तन्तु जैसा; श्वेतम्—सफेद; शृङ्गैः—चोटियों समेत; श्वेतम्—कैलाश पर्वत; इव—सदृश; स्थितम्—स्थित।

अब अक्रूर ने वहाँ सर्पराज अनन्त शेष को देखा जिनकी प्रशंसा सिद्ध, चारण, गन्धर्व तथा असुरगण अपना अपना शीश झुकाकर कर रहे थे। अक्रूर ने जिन भगवान् को देखा उनके हजारों सिर, हजारों फन तथा हजारों मुकुट थे। उनका नीला वस्त्र तथा कमल-नाल के तन्तुओं-सा श्वेत गौर वर्ण ऐसा लग रहा था मानो अनेक चोटियों वाला श्वेत कैलाश पर्वत हो।

तस्योत्सङ्गे घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ।
पुरुषं चतुर्भुजं शान्तं पद्मपत्रारुणेक्षणम् ॥ ४६॥
चारुप्रसन्नवदनं चारुहासनिरीक्षणम् ।
सुभ्रून्नसं चारुकर्णं सुकपोलारुणाधरम् ॥ ४७॥
प्रलम्बपीवरभुजं तुङ्गांसोरःस्थलश्रियम् ।
कम्बुकण्ठं निम्ननाभिं वलिमत्पल्लवोदरम् ॥ ४८॥

शब्दार्थ

तस्य—उस (अनन्त शेष) की; उत्सङ्गे—गोद में; घन—वर्षा के बादल की तरह; श्यामम्—गहरा नीला; पीत—पीला; कौशेय—रेशमी; वाससम्—वस्त्र; पुरुषम्—परमेश्वर को; चतुः-भुजम्—चार भुजाओं वाले; शान्तम्—शान्त; पद्म—कमल

के; पत्र—पत्ते के समान; अरुण—लाल; ईक्षणम्—आँखें; चारु—आकर्षक; प्रसन्न—प्रसन्न; वदनम्—मुखमण्डल; चारु—आकर्षक; हास—हँसी; निरीक्षणम्—जिसकी चितवन; सु—सुन्दर; भ्रू—भौंहें; उत्—उठी; नसम्—नाक; चारु—आकर्षक; कर्णम्—कान; सु—सुन्दर; कपोल—गाल; अरुण—लाल; अधरम्—होंठों को; प्रलम्ब—बड़ी; पीवर—मजबूत; भुजम्—भुजाओं को; तुङ्ग—उठी; अंस—कंधे; उरः-स्थल—तथा छाती; श्रियम्—सुन्दर; कम्बु—शंख की तरह; कण्ठम्—गला; निम्न—गहरी; नाभिम्—नाभि; वलि—रेखाएँ, सिलवटें; मत्—से युक्त; पल्लव—पत्ती के समान; उदरम्—उदर।

तब अक्रूर ने भगवान् को अनन्त शेष की गोद में शान्तिपूर्वक शयन करते देखा। उस परम पुरुष का रंग गहरे नीले बादल के समान था। वे पीताम्बर पहने थे, उनके चार भुजाएँ थीं और उनकी आँखें लाल कमल की पंखुड़ियों जैसी थीं। उनका मुख आकर्षक एवं हँसी से युक्त होने से प्रसन्न लग रहा था। उनकी चितवन मोहक थी, भौंहें सुन्दर थीं, नाक उठी हुई, कान सुडौल तथा गाल सुन्दर और होंठ लाल लाल थे। भगवान् के चौड़े कंधे तथा विशाल वक्षस्थल सुन्दर लग रहे थे और उनकी भुजाएँ लम्बी तथा बलिष्ठ थीं। उनकी गर्दन शंख जैसी, नाभि गहरी तथा उनके पेट में वटवृक्ष के पत्तों जैसी रेखाएँ थीं।

बृहत्कटिततश्रोणि करभोरुद्वयान्वितम् ।
चारुजानुयुगं चारु जङ्घायुगलसंयुतम् ॥ ४९ ॥
तुङ्गगुल्फारुणनख व्रातदीधितिभिर्वृतम् ।
नवाङ्गुल्यङ्गुष्ठदलैर्विलसत्पादपङ्कजम् ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

बृहत्—विशाल; कटि-तट—कमर का भाग; श्रोणि—तथा कूल्हे; करभ—हाथी के सूँड़ जैसे; ऊरु—जाँघों का; द्वय—जोड़ा; अन्वितम्—युक्त; चारु—आकर्षक; जानु-युगम्—दो घुटने; चारु—आकर्षक; जङ्घा—जाँघों का; युगल—जोड़ा; संयुतम्—से युक्त; तुङ्ग—ऊँचा; गुल्फ—टखने; अरुण—लाल; नख-व्रात—नाखूनों से; दीधितिभिः—तेजस्वी किरणों से; वृतम्—घिरा हुआ; नव—कोमल; अङ्गुलि-अङ्गुष्ठ—अँगूठे तथा अँगुलियाँ; दलैः—फूलों की पंखड़ियों की तरह; विलसत्—चमकती; पाद-पङ्कजम्—चरणकमल।

उनकी कमर तथा कूल्हे विशाल थे, जाँघें हाथी की सूँड़ जैसी तथा घुटने और रानें सुगठित थे। उनके उठे हुए टखनों से उनके फूलों पंखड़ियों जैसी पाँव की उंगलियों के नाखूनों से निकलने वाला चमकीला तेज परावर्तित होकर उनके चरणकमलों को सुन्दर बना रहा था।

सुमहार्हमणिव्रात किरीटकटकाङ्गदैः ।
कटिसूत्रब्रह्मसूत्र हारनूपुरकुण्डलैः ॥ ५१ ॥
भ्राजमानं पद्मकरं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिनम् ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

सु-महा—अत्यधिक; अर्ह—मूल्यवान; मणि-व्रात—अनेक मणियों; किरीट—मुकुट; कटक—कड़े; अङ्गदैः—बाजूबंदों से युक्त; कटि-सूत्र—करधनी से; ब्रह्म-सूत्र—जनेऊ; हार—गले का हार; नूपुर—पायल; कुण्डलैः—तथा कान के कुंडलों से; भ्राजमानम्—तेजयुक्त; पद्म—कमल; करम्—हाथ में; शङ्ख—शंख; चक्र—चक्र; गदा—तथा गदा; धरम्—धारण किये; श्रीवत्स—श्रीवत्स चिह्न; वक्षसम्—छाती पर; भ्राजत्—सुशोभित; कौस्तुभम्—कौस्तुभ मणि से; वन-मालिनम्—फूलों की माला धारण किये।

अनेक बहुमूल्य मणियों से युक्त मुकुट, कड़े तथा बाजूबंदों से सुशोभित तथा करधनी, जनेऊ, गले का हार, नूपुर तथा कुण्डल धारण किये भगवान् चमचमाते तेज से युक्त थे। वे एक हाथ में कमल का फूल लिये थे और अन्यों में शंख, चक्र तथा गदा धारण किये थे। उनके वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिन्ह, देदीप्यमान कौस्तुभ मणि तथा फूलों की माला शोभायमान थी।

सुनन्दनन्दप्रमुखैः पर्षदैः सनकादिभिः ।
सुरेशैर्ब्रह्मरुद्राद्यैर्नवभिश्च द्विजोत्तमैः ॥ ५३ ॥
प्रह्लादनारदवसु प्रमुखैर्भागवतोत्तमैः ।
स्तूयमानं पृथग्भावैर्वचोभिरमलात्मभिः ॥ ५४ ॥
श्रिया पुष्ट्या गिरा कान्त्या कीर्त्या तुष्ट्येलयोर्जया ।
विद्ययाविद्यया शक्त्या मायया च निषेवितम् ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ

सुनन्द-नन्द-प्रमुखैः—सुनन्द, नन्द इत्यादि; पर्षदैः—अपने पार्षदों सहित; सनक-आदिभिः—सनक कुमार तथा उनके भाइयों सहित; सुर-ईशैः—मुख्य देवताओं से; ब्रह्म-रुद्र-आद्यैः—ब्रह्म, रुद्र इत्यादि से; नवभिः—नौ; च—तथा; द्विज-उत्तमैः—मुख्य ब्राह्मणों (मरीचि आदि) से; प्रह्लाद-नारद-वसु-प्रमुखैः—प्रह्लाद, नारद, उपरिचर वसु इत्यादि से; भागवत-उत्तमैः—सर्वश्रेष्ठ भक्तों द्वारा; स्तूयमानम्—प्रशंसित; पृथक्-भावैः—प्रत्येक द्वारा भिन्न भावों से; वचोभिः—शब्दों से; अमल-आत्मभिः—पवित्र कृत; श्रीया पुष्ट्या गीरा कान्त्या कीर्त्या तुष्ट्या इलया ऊर्जया—श्री, पुष्टि, गीर, कान्ति, कीर्ति, तुष्टि, इला, ऊर्जा नामक अन्तरंगा शक्तियों से; विद्यया अविद्यया—विद्या तथा अविद्या नामक शक्तियों से; शक्त्या—अपनी ह्लादिनी शक्ति से; मायया—अपनी सृजनात्मक शक्ति से; च—तथा; निषेवितम्—सेवित होकर।

भगवान् के चारों ओर घेरा बनाकर पूजा करने वालों में नन्द, सुनन्द तथा उनके अन्य निजी पार्षद, सनक तथा अन्य कुमारगण, ब्रह्मा, रुद्र तथा अन्य प्रमुख देवता, नौ मुख्य ब्राह्मण तथा प्रह्लाद, नारद, उपरिचर वसु इत्यादि महाभागवत थे। इनमें से प्रत्येक महापुरुष अपने अपने विशिष्टभाव में भगवान् की प्रशंसा में पवित्र शब्दोच्चार करके पूजा कर रहा था। यही नहीं, भगवान् की सेवा में उनकी मुख्य अन्तरंगा शक्तियों—श्री, पुष्टि, गीर, कान्ति, कीर्ति, तुष्टि, इला तथा ऊर्जा—के साथ साथ भौतिक शक्तियाँ विद्या, अविद्या, माया तथा उनकी अंतरंगा ह्लादिनी शक्ति जुटी हुई थीं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इन श्लोकों में उल्लिखित भगवान् की शक्तियों की व्याख्या

की है : ''श्री धन की, पुष्टि बल की, गीर ज्ञान की, कान्ति सौन्दर्य की, कीर्ति यश की तथा तुष्टि त्याग की शक्ति है। ये ही भगवान् के छह ऐश्वर्य हैं। इला उनकी *भूशक्ति* है, जो *सन्धिनी* भी कहलाती है—(सन्धिनी अन्तरंगा शक्ति है, जिसका अंश पृथ्वी है)। ऊर्जा उनकी अन्तरंगा शक्ति है, जिससे लीलाएँ सम्पन्न होती हैं और यही विस्तार करके इस जगत में तुलसी का पौधा बनती है। विद्या तथा अविद्या बहिरंगा शक्तियाँ हैं, जो जीवों को क्रमश: मुक्ति तथा बन्धन प्रदान करने वाली हैं। शक्ति उनकी *ह्लादिनी* शक्ति है और माया वह अन्तरंगा शक्ति है, जो विद्या तथा अविद्या का आधार है। *च* शब्द भगवान् की तटस्था शक्ति—*जीव शक्ति* के लिए आया है। यह शक्ति माया के अधीन है। ये सभी शक्तियाँ साक्षात् होकर भगवान् विष्णु की सेवा कर रही थीं।''

विलोक्य सुभृशं प्रीतो भक्त्या परमया युत: ।
हृष्यत्तनूरुहो भावपरिक्लिन्नात्मलोचन: ॥ ५६ ॥
गिरा गद्गदयास्तौषीत्सत्त्वमालम्ब्य सात्वत: ।
प्रणम्य मूर्ध्नावहित: कृताञ्जलिपुट: शनै: ॥ ५७ ॥

शब्दार्थ

विलोक्य—(अक्रूर ने) देखकर; सु-भृशम्—अत्यधिक; प्रीत:—प्रसन्न; भक्त्या—भक्ति से; परमया—परम; युत:—युक्त; हृष्यत्—खड़े हुए; तनू-रुह:—शरीर के रोम; भाव—प्रेमानन्द से; परिक्लिन्न—आर्द्र, नम; आत्म—शरीर; लोचन:—तथा आँखें; गिरा—वाणी से; गद्गदया—अवरुद्ध; अस्तौषीत्—स्तुति की; सत्त्वम्—गम्भीरता; आलम्ब्य—सहारा लेकर; सात्वत:—महाभागवत; प्रणम्य—झुककर; मूर्ध्ना—सिर के बल; अवहित:—ध्यानपूर्वक; कृत-अञ्जलि-पुट:—आदरपूर्वक हाथ जोड़कर; शनै:—धीरे धीरे।

ज्योंही महाभागवत अक्रूर ने यह दृश्य देखा, वे अत्यन्त प्रसन्न हो उठे और उनमें दिव्य शक्ति जाग उठी। तीव्र आनन्द से उन्हें रोमांच हो आया और नेत्रों से अश्रु बह चले जिससे उनका सारा शरीर भीग गया। किसी तरह अपने को सँभालते हुए अक्रूर ने पृथ्वी पर अपना सिर झुका दिया। तत्पश्चात् सम्मान में अपने हाथ जोड़े और भावविभोर वाणी से अत्यन्त धीमे धीमे तथा ध्यानपूर्वक भगवान् की स्तुति करने लगे।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''अक्रूर द्वारा दर्शन'' नामक उन्तालिसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।